पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा-७२, बोल १
ता. ७-७-१९८२
लंदन हॉल में प्रवचन नं. ३

यह एक श्री समयसार नाम का परमागम शास्त्र है। यह आज से दो हजार वर्ष पहले समर्थ आचार्य कुन्दकुन्द भगवान हुए, उनकी रचना है। उसमें एक कर्ता-कर्म नाम का special (खास) अधिकार लिखने में आया है। वास्तव में तो इस समयसार शास्त्र में नव तत्त्व का विवरण है। नव तत्त्व का अधिकार है। परन्तु special कर्ता-कर्म अधिकार का एक विभाग इसमें रखने में आया है। उसका कारण कि आत्मा, प्रत्येक आत्मा स्वभाव से ज्ञायक होने से ज्ञाता-दृष्टा होने पर भी ऐसे अपने निज स्वभाव को चूककर-भूलकर आत्मा स्वभाव से अकर्ता होने पर भी अनादिकाल से ऐसा मानता आता है कि मैं पर पदार्थों का करनेवाला हूँ, मैं पुण्य-पाप के परिणाम का करनेवाला हूँ। इसप्रकार अनादिकाल से आत्मा अकर्ता ज्ञायक होने पर भी शुभाशुभभाव का मैं कर्ता हूँ ऐसी कर्तृत्वबुद्धि मानकर अनादिकाल से जीव भटकता है। उस कर्ता-कर्म की निवृत्ति हो और आत्मा का ज्ञान कर्म हो तब आत्मा को शांति का अनुभव होता है। उस कर्ता-कर्म अधिकार की अभी ७२ गाथा हम लेते हैं। उसमें शिष्य का एक प्रश्न है, शीर्षक में।

अब शिष्य पूछता है कि, हे प्रभु! **ज्ञानमात्रसे ही बन्ध का निरोध कैसे होता है?** मात्र आत्मा का ज्ञान, आत्मा का श्रद्धान और आत्मा का आचरण इतनी ही स्वाश्रित क्रिया करने से बंध का अर्थात् दुःख का अभाव किसप्रकार से होता है? किस प्रकार होता है? उसकी विधि क्या है? मुझे कृपा करके समझाईये। दुःख के नाश का उपाय शिष्य पूछता है।

अज्ञानी जीवमात्र दुःखी है। सभी अज्ञानी दुःखी हैं। फिर बाहर में चाहे जैसे पुण्य का उसे संयोग हो, राजा हो, चक्रवर्ती हो या देव हो तो भी उन संयोग में किंचित् मात्र सुख नहीं है। मात्र संयोग में सुख है ऐसी कल्पना करके बैठा है। एक बड़ी भ्रांति है। सुख आत्मा में है और वह सुख स्वाधीन है। अविनाशी सुख की प्राप्ति कैसे हो? उसका उपाय इसमें बताया है। शिष्य पूछता है कि मेरी दशा में ये दुःख का अभाव कैसे हो? अज्ञानजन्य दुःख - आकुलता का वेदन होता है। मुझे राग-द्वेष-मोह के परिणाम होते हैं। और उनके फल में मात्र दुःख का मैं वेदन करता हूँ। तो प्रभु कृपा करके मुझे समझाओ, कि इस दशा में उत्पन्न होता हुआ दुःख उसका अभाव कैसे हो? और आत्मिक सुख, अतीन्द्रिय सुख, अनाकुल आनंद कैसे मुझे प्रगट हो - प्राप्त हो? उसकी विधि शिष्य पूछता है। उसके उत्तर में आचार्य महाराज जवाब देते हैं कि सुन!

तेरी जिज्ञासा है, सुख की प्राप्ति का अर्थी तू है। मोक्षार्थी हुआ है। **मात्र मोक्षअभिलाष** (आत्मसिद्धि शास्त्र, गाथा ३८) मात्र छूटने का जो कामी है। और दुःख से ऊबा है ऐसा शिष्य अब पूछता है। उसे आचार्य महाराज उत्तर देते हैं।

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदिं जीवो॥७२॥
अशुचिपना, विपरीतता ये आस्रवोंके जानके,
अरु दुःखकारण जानके, इनसे निवर्तन जीव करे॥७२॥

गाथा का अर्थ:- उसके ऊपर की फिर संस्कृत टीका है। गाथा का अर्थ:- **आस्रवोंकी** अर्थात् पुण्य आस्रव और पाप आस्रव (ये) आस्रव के दो भेद हैं। पाप को भी आस्रव कहा जाता है और पुण्य के परिणाम को भी आस्रव कहा जाता है। उन **आस्रवोंकी अशुचिता** अर्थात् मल और मैलपना **और विपरीतता** अर्थात् जड़पना **तथा वे दुःखके कारण हैं**। पुण्य के परिणाम और पाप के परिणाम वर्तमान में जीव को **दुःख के कारण हैं ऐसा जानकर**, जब ऐसा जाने कि ये हिंसा, झूठ, चोरी के परिणाम तो दुःख के कारण हैं, हैं और हैं। यह तो पूरा जगत, अन्यमत भी कहता है कि पाप से दुःख होता है। पाप के परिणाम से जीव दुःख भोगता है, ऐसा पूरा जगत कहता है। परन्तु जगत के मत से, तीर्थंकर सर्वज्ञ देवाधिदेव परमात्मा का मत जगत से अलग पड़ता है। जगत के जीव कहते हैं कि पाप से दुःख और पुण्य से सुख होता है।

सर्वज्ञ वीतराग देव फरमाते हैं (कि) पाप के परिणाम से तीव्र दुःख होता है और पुण्य के परिणाम से मंद दुःख होता है। क्योंकि दोनों भाव कषाय रूप हैं। और कषाय का फल, तीव्र कषाय को पाप कहते हैं और मंद कषाय को पुण्य कहते हैं। दोनों में से कोई भाव धर्मरूप नहीं है। धर्म के परिणाम उसे कहते हैं कि जिसमें आत्मिक सुख प्रगट हो, जिसमें वीतराग दशा प्रगट हो और उस वीतराग भाव का फल आत्मा को वर्तमान में आनंद आये।

अतः आचार्य भगवान फरमाते हैं कि पाप को तो जगत दुःख का कारण कहता है परन्तु सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा पुण्य के परिणाम को भी दुःख का कारण कहते हैं। पुण्य के परिणाम से आत्मा सुखी नहीं होता। वह भी अनंत-अनंतबार अनंतकाल से पुण्य करता आया है।

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला,
तो भी अरे! भवचक्र का, फेरा न एक भी टला (राजपद, अमूल्य तत्त्व विचार)। पुण्य है वह संसार तत्त्व है और पाप (है वह) भी संसार तत्त्व है। दोनों प्रकार के परिणाम का फल वर्तमान में दुःख है, और भावीकाल में कर्म का बंध होता है जो निमित्तपने उसके उदय में जुड़ने पर उसे दुःख का वह निमित्त होगा, परन्तु आत्मिक सुख का या धर्म का कारण वह हो सकता नहीं। एकदम स्पष्ट बात! सर्वज्ञ भगवान वीतराग देवाधिदेव परमात्मा की बात ऐसी अपूर्व है कि जगत के जीवों के कान पर सत्य बात सुनने जितना भी पुण्य नहीं है, असत् बात सुनने को मिली है।

आचार्य भगवान ने शुरुआत में तो ऐसा कहा है, कि काम, भोग, बंधन की कथा अनादिकाल से जीव ने सुनी, परिचय किया और अनुभव में भी आया। परन्तु राग से भिन्न शुद्धात्मा की बात इसने रुचिपूर्वक सुनी नहीं है। वह बात मैं सुनाऊँगा ऐसी मैंने प्रतिज्ञा की है। जो जगत सुनाता है वह ही यदि सर्वज्ञ भगवान कहें, तो सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा और अनादिकाल से अन्यमत में रहे हुए अज्ञानी जीव उन दोनों के प्रतिपादन में समानपना आ जायेगा। यदि सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आये कि पुण्य से

सुख होता है और धर्म होता है तो अन्यमति भी पुण्य से धर्म तो फरमाते हैं, कहते हैं। परन्तु वहाँ बड़ा अंतर और भिन्नपना है।

पाप और पुण्य के दोनों प्रकार के परिणाम कषाय की जाति होने से आत्मा को वर्तमान में आकुलता उत्पन्न करने वाले हैं, दुःख के देने वाले हैं, ऐसा आगे टीका में स्पष्टीकरण करके कहेंगे। बात जरा नई लगे ऐसी तो है परन्तु परम सत्य है। आत्मा का हित हो ऐसी बात है। कि **ऐसा जानकर जीव उनसे निवृति करता है।** पुण्य के परिणाम और पाप के परिणाम की रुचि छोड़ता है। रुचि छूट जाती है। पाप दुःख का कारण और पुण्य सुख का कारण ऐसी जो भ्रान्ति थी वह जब पुण्य और पाप दोनों आस्रव तत्त्व हैं, दोनों प्रकार के परिणाम बंध का कारण हैं; ऐसा जब जीव जानता है तब दोनों प्रकार के परिणाम से भिन्न भगवान आत्मा अंतर विराजमान चैतन्यमूर्ति है उसका लक्ष करता है, उसमें लीन होता है तब उसे दुःख की निवृत्ति होती है और सुख की प्राप्ति होती है, शुरुआत हो जाती है।

यह बात करते हैं कि वह **जीव उनसे निवृत्ति करता है**, आस्रव से निवृत्ति करता है। आस्रव का निरोध, उसे भगवान संवर कहते हैं। पाप का निरोध और पुण्य की प्रवृत्ति वह संवर तत्त्व नहीं है। पाप और पुण्य दोनों प्रकार के परिणाम में एकताबुद्धि छूट जाये, रुचि छूट जाये और आत्मा का अनुभव होवे उसको भगवान संवरतत्त्व कहते हैं, धर्म तत्त्व कहते हैं। इसकी टीका। टीका अर्थात् विस्तार। जो मूल प्राकृत गाथा है उसके ऊपर संस्कृत टीका हुई है। एक हजार वर्ष पहले अमृतचन्द्र आचार्य हुए हैं, जंगलवासी थे और आत्मा के ध्यान में मग्न रहते थे। नित्य अतीन्द्रिय आनंद का भोजन करने वाले थे, ऐसे अति आसन्नभव्य धर्मात्मा, उसकी संस्कृत टीका की रचना करते हैं। इसका अनुवाद आज से दो सौ वर्ष पहले जयपुर में एक जयचंद पंडित हुए उन्होंने अनुवाद किया है। और उसका अक्षर-अक्षर गुजराती भाषा में अनुवाद हुआ है।

टीका:- पहले दृष्टांत देते हैं कि आस्रव का किसके साथ मिलान करते हैं। कि **जलमें** अर्थात् पानी में जैसे मल **सेवाल (काई) है**, पानी के ऊपर की सतह के ऊपर सेवाल जमती है, काई, फूग, सेवाल। पानी के ऊपर जैसे **सेवाल है सो मल** और **मैल है**। वह पवित्र चीज नहीं है। पानी पवित्र है और जो सेवाल है वह मैल है; वह निकाल देने जैसा है, वह रखने जैसा नहीं है। **मल या मैल है; उस सेवालकी भाँति** पुण्य के परिणाम या पाप के परिणाम दोनों प्रकार के परिणाम परमार्थनय से देखने में आये तो दोनों बंध के कारण हैं। एक लोहे की बेड़ी और एक सोने की बेड़ी। उल्टा लोहे की बेड़ी की अपेक्षा सोने की बेड़ी में वजन ज्यादा होता है। अतः पैर में घर्षण ज्यादा लगता है।

परन्तु लोगों को मिठास लगती है पुण्य के फल में। पुण्य और पुण्य के फल का प्रीतिवान, राग का रसिया उसे आचार्य भगवान फरमाते हैं कि भाई उसमें सुख नहीं है। उसकी रूचि छोड़ और शुद्धात्मा की रूचि कर और आत्मा का अनुभव कर तो तुझे सुख की प्राप्ति होगी। **उस सेवालकी भाँति**, दृष्टांत दिया, पानी के ऊपर जैसे **सेवाल है** वह **मैल है**। ऐसे ही उसकी भाँति, **सेवालकी भाँति आस्रव**, आस्रव अर्थात् नये कर्म के आवागमन में हेतु हो, निमित्त कारण हो ऐसे आत्मा के विभाव परिणाम को-विकृत परिणाम को भगवान आस्रव कहते हैं। उस आस्रव के दो भेद हैं, एक पुण्यास्रव और एक पापास्रव। जैसे हिंसा, झूठ, चोरी दुःख का कारण है ऐसे अहिंसा का परिणाम भी दुःख का

कारण है। जगत पूरा उसे धर्म मानता है परन्तु वह धर्म का परिणाम नहीं है। पर जीव के प्रति करुणा का भाव आये, बचाने का भाव आता है, वह पुण्य तत्त्व है, पाप तत्त्व नहीं है, परन्तु धर्म तत्त्व नहीं है। अहिंसा का परिणाम पाप तत्त्व नहीं है वैसे ही धर्म तत्त्व नहीं है, वह पुण्य तत्त्व है।

मुमुक्षु: बहुतों को ऐसा लगता है कि हम पुण्य अब न करें?

पू. लालचंदभाई: पुण्य करने (या) न करने का प्रश्न नहीं है। परन्तु जिस प्रकार के परिणाम आते हैं, होते हैं उनका स्वरूप क्या है? समझने जैसी चीज यह है, कि उनका स्वरूप क्या है? करना (या) न करना (वह) प्रश्न नहीं है। क्योंकि आर्य जीव को करुणा, कोमलता के परिणाम, दया, दान, भक्ति के शुभभाव - पुण्यभाव आते हैं तो सही। गृहस्थ को पुण्य का परिणाम आता है परन्तु पुण्य के परिणाम का स्वरूप क्या है? कि वह बंध का कारण है, वह वर्तमान दुःख का कारण है और परम्परा से भी दुःख का कारण है। ऐसा यदि जाने तो सच्चे सुख की शोध कर सके। परन्तु पुण्य से सुख माने तो उसे आत्मिक सुख की प्राप्ति का प्रयत्न हो सकता नहीं। कि भाई, हमारे जैसा कोई सुखी नहीं है, अब इससे ज्यादा क्या सुख चाहिये? गाँव में थे तो बहुत दुःखी थे और नैरोबी और लंदन आये तो अब बहुत सुखी हो गये, हमारे जैसा कोई सुखी नहीं है।

भाई! परमात्मा कहते हैं कि तेरे जैसा कोई दुःखी नहीं है। एक बहन आज बात करती थीं कि अमेरिका में सुबह से शाम तक छह गोली लेते हैं। एक बहन, नाम नहीं लूँगा परन्तु दोपहर को कहती थीं सुबह से शाम तक छह गोली लें। अब इसमें सुख किसको कहना? अतः सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा फरमाते हैं प्रभु सुन! सभी को प्रभु कह कर बुलाते हैं। भगवान सुन! भगवान तेरे स्वरूप की बात एक बार तू मध्यस्थ होकर सुन। तेरा जो पक्ष है पुण्य का (उसकी) हमें खबर है। संतों को खबर है सब कि जगत के जीवों को पुण्य का पक्ष है। पुण्य से धर्म होता है ऐसा मानते हैं, पुण्य से सुख होता है ऐसा मानते हैं। वह सब उसकी भ्रांति है। सच्चा सुख, पुण्य और पुण्य के फल में सच्चा सुख नहीं है। तब सच्चा सुख कहाँ है? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। कि वर्तमान में इस पुण्य के परिणाम में भी मुझे आकुलता और दुःख होता है। यदि पुण्य के परिणाम से सुख होता हो तो कोई भी पुण्य का परिणाम ले लो। कि भगवान की भक्ति करने बैठा या पूजा करने बैठा। पंद्रह मिनिट, आधा घंटा या घंटा हुआ वहाँ थकान लगती है उसे। धर्म के परिणाम में थकान नहीं होती और जिस परिणाम से थकान लगे वो धर्म का परिणाम नहीं होता। क्या कहा? फिर से। जिस परिणाम में आत्मा को थकान लगे उस परिणाम का नाम धर्म नहीं होता और धर्म के परिणाम में थकावट नहीं होती, आनंद होता है। यह तो एकदम सर्वज्ञ भगवान की कही हुई बात न्याय से है। परन्तु अब उसे बैठानी हो तो वह स्वयं बैठावे तो बैठे ऐसी है।

क्या कहते हैं? आहाहा! ये देवाधिदेव परमात्मा तीन लोक के नाथ जिन्हें केवलज्ञान प्रगट हो गया (है)। एक समय में स्व और पर, लोकालोक और चराचर पदार्थ को समयमात्र में प्रत्यक्ष जाने ऐसे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा की दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि **आस्रव मलरूप** और **मैल है**। ये दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम **मैल हैं, अशुचि हैं**, वे पवित्र नहीं हैं, **-अपवित्र** भाव **हैं**। आहाहा!

कैसे बैठे उसे? जहाँ पुण्य किया तो ऐसा मानता है कि मैंने धर्म किया और धर्मी हुआ और प्रशस्तिपत्र जगत के जीव देते हैं। जहाँ पाँच-पच्चीस लाख रूपया कोई दान में दे, आहाहा! (वहाँ) धर्म

की उपाधि देते हैं, धर्मी हो गया। अरे भाई कर्मी है, धर्मी नहीं है। क्योंकि वह शुभभाव है वह भी दुःख का कारण है, ऐसा वह जानता नहीं है परन्तु उसे सुख का कारण मानता है। वास्तव में उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि पुण्य छोड़कर पाप करना। ऐसा उपदेश सर्वज्ञ भगवान का नीचे उतरने का उपदेश नहीं होता। ऊपर-ऊपर चढ़ने का उपदेश होता है। पाप को तो छोड़ा।

एक प्रश्न हुआ था राजकोट में। हमारे पड़ोसी छोटुभाई विराणी (उन्होंने) गुरुदेव से प्रश्न किया रात्रि को, कि साहेब पाप तो हमें करना नहीं है। क्योंकि पाप करते हैं तो नरक और निगोद में जाना पड़ता है, या तिर्यंच में जाना पड़ता है। इसलिये पाप तो हमें करना नहीं है। आप कहते हो कि शुद्धात्मा का अनुभव करो तो धर्म होगा। अब शुद्धात्मा के अनुभव तक पहुँचा नहीं जाता। पाप हमें करना नहीं है तो बीच का रास्ता रहा, पुण्य करना कि क्या? पुण्य तो करना ना? ऐसा एक रात्रि चर्चा में प्रश्न आया। पूरे जगत का प्रश्न है यह। यह एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं है। पूरे जगत का प्रश्न है।

गुरुदेव ने उत्तर दिया कि भाई आर्य जीव है उसे पुण्य का परिणाम तो आता है। जवाब कैसा दिया कि पुण्य का परिणाम करो ऐसा जवाब नहीं दिया अपितु पुण्य का परिणाम तो आता है। ज्ञानी की हर बात में मर्म होता है। पुण्य के परिणाम तो आते हैं आर्य जीव को। परंतु वे पुण्य के परिणाम जो आस्रव हैं, मलिन अपवित्र भाव हैं, उनसे भिन्न मेरा भगवान आत्मा पवित्र है इसप्रकार उनसे बारंबार भेदज्ञान करके आत्मा को पहिचानना। आत्मा का लक्ष करना। ऐसा उत्तर दिया।

ऐसे पुण्य के आते हुए परिणाम के ऊपर से लक्ष छोड़कर और जो ज्ञानमय आत्मा है, जो पुण्य के परिणाम आते हैं उन्हें भी जाननहार जो ज्ञान है कि जो ज्ञान आत्मा को जानता है ऐसे आत्मा को जानना। पुण्य का परिणाम करना तो नहीं मगर पुण्य के परिणाम को जानने में भी रुकना नहीं। परन्तु पुण्य के परिणाम से भिन्न ज्ञान और आनंदमय आत्मा अंदर विराजमान है, उसका अंतर लक्ष करना, उसका (अंतर) ध्यान करना। कठिन पड़ता है जगत को परन्तु सत्य तो तीनोंकाल सत्य है। कठिन पड़ता है इसलिये सरल करके विपरीत बात कही नहीं जा सकती। संत कहते ही नहीं हैं।

सेवालकी भाँति आस्रव, **आस्रव** अर्थात् पुण्य आस्रव और पाप आस्रव **मलरूप या मैलरूप अनुभवमें आते है इसलिए वे अशुचि हैं (-अपवित्र हैं)**, पवित्र परिणाम नहीं हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष के परिणाम (क्षणिक) पवित्र हैं **और भगवान आत्मा** त्रिकाल पवित्र है। संवर, निर्जरा क्षणिक पवित्र परिणाम हैं **और भगवान आत्मा** त्रिकाल पवित्र परमात्मा विराजमान है। उनके साथ तुलना करते हैं।

जीवतत्त्व पवित्र है। आस्रवतत्त्व अपवित्र तत्त्व है। तत्त्व दो हैं। जीवतत्त्व और आस्रवतत्त्व। नव तत्त्व के दो प्रकार, एक जीव और दूसरा आस्रव। यहाँ आस्रव की बात चलती है। आस्रव अशुचि, अपवित्र है। अरे! उसके स्वरूप को तो जान! उसका स्वरूप क्या है? तो उससे भिन्न कुछ आत्मा का स्वरूप क्या है उसे जिज्ञासा होगी। अन्यथा पुण्य करके संतोष माने तो उसे कोई ऊँची गति मिल जाये और यहाँ पुण्य किया हो तो देवगति में जाकर दुःख भोगे। पुण्य यहाँ करे और फिर भी देवगति में जाकर दुःख भोगे।

आत्मा का स्वरूप पुण्य-पाप से भिन्न, ज्ञान और आनंद की मूर्ति आत्मा, अंदर चिदानंद आत्मा

विराजमान है। जलहल ज्योत **भगवान आत्मा** विराजमान है। जैसे कपड़ा मैला हुआ तो उसकी अवस्था से देखने में आये तो कपड़ा मलिन हुआ है यह बात सच्ची है। परन्तु वह अवस्था की दृष्टि गौण करके उस कपड़े के स्वच्छ, निर्मल स्वभाव के समीप जाकर देखने में आये तो कपड़ा स्वच्छ और निर्मल ही है। वह मलिन हुआ नहीं है। मलिन तो कपड़े की अवस्था हुई है। कपड़ा तो जैसा है वैसा है। ऐसे ही कपड़ा लाल हुआ ऐसा कहने में आता है परन्तु वास्तव में लालपना रंग का धर्म है और सफेदपना वह कपड़े का धर्म है।

ऐसे इस वर्तमान में पुण्य और पाप का प्रेम बहिर्मुख होता तो है। पर्याय में, अवस्था में, हालत में, दशा में क्षण में पाप और क्षण में पुण्य, शुभ और अशुभ दो प्रकार के भाव उठते हैं। ऐसी वृत्ति का उत्थान होता तो है परन्तु उससे भिन्न अंदर में आत्मा चैतन्यमूर्ति पवित्र परमात्मा विराजमान है। यहाँ कहेंगे **भगवान आत्मा**, सभी आत्मा भगवान हैं। शक्ति से, स्वभाव से परमार्थदृष्टि से देखने में आये तो सभी आत्मा परमात्मा हैं - भगवान हैं। भग् अर्थात् ज्ञान लक्ष्मीवान आत्मायें हैं। आत्मा पुण्यशाली नहीं है, आत्मा तो ज्ञानवान है उसे आत्मा कहने में आता है। पुण्यवाला आत्मा नहीं है। पुण्य तो संयोग है। पुण्य कोई आत्मा का स्वभाव नहीं है। ऐसे आत्मा को एक बार अंतर्मुख होकर पहचाने तो उसके भव का अंत आ जाये, दुःख का अंत आ जाये। अन्यथा तो क्रियाकाण्ड में पाप को छोड़कर पुण्य की क्रिया तो अनंत बार की और अनंतबार स्वर्ग का देव हुआ। एक (ही) बार देव नहीं हुआ, आत्मा अनादि का है और अनंतबार पुण्य के परिणाम करके देवगति में गया। और फिर से देवगति में से वापस नीचे चला जाता है और निगोद में भी चला जाता है। परन्तु धर्म एक समय (भी) किया नहीं। पुण्य अनंतबार किया और धर्म एक समय (भी) किया नहीं। धर्म अर्थात् शुद्धात्मा का अवलंबन लेकर, उसमें एकाग्र होकर और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के जो वीतरागी परिणाम प्रगट करने चाहिये, वे एक समय मात्र भी उसने प्रगट किये नहीं। एक समय भी यदि प्रगट करे तो अल्पकाल में उसकी मुक्ति हो, ऐसा अनुभव का फल है।

ये आस्रव अशुचि, मल और मैल हैं। हिंसा के परिणाम भी मैल और मल और अहिंसा के परिणाम, ब्रह्मचर्य के परिणाम - शुभभाव, वे भी मलिन और मैले परिणाम हैं। भाई! इससे भिन्न पवित्र अंदर आत्मा विराजमान है। परिणाम में मलिनता और आत्मा का स्वभाव पवित्र। पवित्र और अपवित्र दोनों भाव एक साथ रहते हैं परन्तु दोनों एक हो सकते नहीं। पवित्र ऐसा जीव तत्त्व और वर्तमान अपवित्र पुण्य-पाप के आस्रवभाव वे दोनों एक साथ रहते हैं।

जैसे पानी मैला हुआ तो वह मलिनता है और पानी स्वभाव से स्वच्छ है। वह स्वच्छता और मलिनता वे एक साथ रहते हैं। मलिनता का अभाव होता है और स्वच्छता की अवस्था प्रगट होती है। स्वच्छता कहाँ से आती है? फिटकरी में से स्वच्छता नहीं आती है। यह शक्ति की व्यक्ति है, प्राप्य की प्राप्ति होती है, जो है उसमें से प्रगट होता है। ऐसे ही यह भगवान आत्मा ज्ञान और आनंद का पुंज है। उसका ध्यान करने पर, एकाग्र होने पर उसमें से ज्ञान और आनंद की एक अपूर्व दशा प्रगट होती है। उसे धर्म के परिणाम कहते हैं। ऐसे आत्मा की स्वानुभवरूप दशा अनुभूतिरूप दशा एक समयमात्र जीव ने आज तक की नहीं है। धर्म किया नहीं है। पाप करके निगोद और नरक में, तिर्यंच में जाता है;

पुण्य करे तो स्वर्ग और मनुष्य होता है; परन्तु धर्म किया नहीं। धर्म करना उसे आता नहीं। धर्म कैसे करना? यह सीखने जैसा है।

पाप और पुण्य कैसे करना वह तो अनादि से सीखा ही है। उसकी पाठशाला नहीं होती और उसका उपदेश नहीं होता। उपदेश तो धर्म का होता है। धर्म अर्थात् आत्मा का जो स्वभाव ज्ञान, दर्शन, चारित्र के परिणाम उनका अवलंबन लेने पर आत्मा को अंदर में शांति का वेदन आता है। वर्तमान में गृहस्थ अवस्था में आत्मा का अनुभव हो सकता है। वह अनुभव कैसे हो उसकी बात यहाँ समझाते हैं कि आस्रव मलिन हैं, **अशुचि हैं (–अपवित्र हैं); और** सामने **भगवान आत्मा तो**, दो के बीच का भेदज्ञान, आत्मा और आस्रव के बीच का भेदज्ञान। भेदज्ञान अर्थात् भिन्न करने की कला।

जिसप्रकार गेहूँ और कंकड़ भिन्न करने में आते हैं, जिसप्रकार कमोद हो उसमें छिलका और चावल दोनों भिन्न करने में आते हैं ऐसे ये पुण्य और पाप के परिणाम दोनों छिलके हैं। जगत के जीव छिलके कूटते हैं। यहाँ भगवान आत्मा अंदर में पवित्र है। ये सभी आत्माओं की बात चलती है। सभी आत्माओं का स्वरूप ऐसा है कि अंतर में आत्मा पवित्र परमात्मा शक्तिरूप से विराजमान है, यह दृष्टि में आ सकता है। **भगवान आत्मा तो सदा ही** अर्थात् हमेशा के लिये, तीनों काल **अतिनिर्मल**, सर्वथा निर्मल, सर्वथा पवित्र, सर्वथा शुद्ध हैं। संवर और निर्जरा के परिणाम हैं वे निर्मल हैं परन्तु भगवान आत्मा अतिनिर्मल है। इतना विशेषण में फर्क किया। **भगवान आत्मा तो** सभी आत्माओं को भगवान कहकर बुलाते हैं।

आचार्य महाराज फरमाते हैं कि सभी आत्माएँ भगवान हैं, वर्तमान में हम उनकी अवस्था को देखते नहीं हैं। यह स्त्री हो, पुरुष हो, कर्म से बंधा हुआ हो या पुण्य-पाप का प्रेम उत्पन्न होता हो उसे अपने लक्ष में से निकाल देते हैं, गौण करते हैं। उसके ऊपर हमारा लक्ष नहीं है। परन्तु देह-देवल में स्थित भगवान पवित्र परमात्मा विराजमान है। हमने ऐसे आत्मा को देखा, जाना और अनुभव किया है। अतः हमारी दृष्टि में सभी आत्माएँ हमें भगवान आत्माएँ दिखती हैं। किसके ऊपर राग करें और किसके ऊपर द्वेष करें? हमें तो सभी आत्माएँ भगवान हैं ऐसा दिखता है, ऐसी पुकार करते हैं इसमें। आहाहा!

वहाँ वह बात (श्रीमद्जी ने कही)। ऐसा एक बनाव बना कि श्रीमद् राजचन्द्रजी सुबह में जंगल जा रहे थे तब एक चरवाहा गाय भैंस चरा रहा था। श्रीमद्जी ऐसे चले जा रहे हैं तब वह चरवाहा उनके सामने टुकुर-टुकुर देखता रहा। अनुकरण करता है कि ये कोई महापुरुष लगते हैं, गंभीर उनकी चाल, सौम्यमूर्ति देखकर। फिर उसके बाद वापस आते हैं श्रीमद्, और ऐसा विचार करो कि मैं भगवान हूँ, तुम ऐसा विचार करो कि मैं भगवान हूँ। तो चरवाहा हूँ न, उसने कोई तर्क नहीं किया। बनिये बहुत तर्क करते हैं। परन्तु उसने कोई तर्क नहीं किया। आँख मींचकर चरवाहा बोला कि मैं भगवान हूँ।

ऐसे यहाँ समयसार में आचार्य भगवान सबको भगवान कहकर बुलाते हैं। कोई ऐसा तर्क उठे कि हम तो पामर हैं, वर्तमान में दुःखी हैं, कोई बालक है, कोई युवा है, कोई वृद्ध है, कोई धनवान और कोई निर्धन है। ना, ना, ना! सभी आत्मा तो भगवान एक समान हैं। शक्ति से - स्वभाव से आत्मा परमात्मा है। भाई! ऐसे आत्मा का तुम ध्यान करो तो बहिरात्म दशा छूटकर और अंतरात्म दशा होकर

अल्पकाल में परमात्म दशा प्रगटती है। भगवान आत्मा का ध्यान करना है। यह अंदर भगवान आत्मा विराजमान है। भग् अर्थात् ज्ञानवान लक्ष्मीवान आत्मा है। वह आत्मा तो **सदा ही** तीनों काल, अभी कर्म से बंधा हुआ है उस समय, वर्तमान पुण्य-पाप का परिणाम है उस समय उस परिणाम के ऊपर नजर मत करो। उस परिणाम का लक्ष छोड़कर अंदर में, अंतर में एक ज्ञानवान आत्मा विराजमान है उसका लक्ष करने पर आत्मा भगवान है ऐसा तुम्हें वर्तमान में प्रत्यक्ष अनुभव में आयेगा।

कुन्दकुन्द आचार्य भगवान ने (समयसार की) पाँचवी गाथा में ऐसा कहा कि मैं एकत्वविभक्त आत्मा की बात तुम्हें कहूँगा। पुण्य-पाप से विभक्त, भिन्न और ज्ञान-आनंद से अविभक्त, अभिन्न ऐसे शुद्धात्मा की बात मैं कहूँगा। परन्तु मैं तुम्हें कहूँ तो तुम अपने अनुभव से प्रमाण करना। ऐसे ही यहाँ आचार्य भगवान डंके की चोट पर कहते हैं कि ऐसे भगवान आत्मा तुम हो ऐसा हम (तुम्हें) कहते हैं। मात्र हमारे कहने से तुम मत मानना। परन्तु पुण्य-पाप की वृत्ति का उत्थान होता है उसकी तरफ का झुकाव छोड़कर, उसकी तरफ का लक्ष छोड़कर एक अंदर में ज्ञान और आनंद का पुंज भगवान आत्मा विराजमान है उसका अंतर्ध्यान करके, लक्ष करके उसमें लीन होओ और उसका अनुभव करो तो मैं भगवान हूँ ऐसा तुम्हें अनुभव में आयेगा। हम तो कहते हैं परन्तु तुम अपने अनुभव से प्रतीति करना, हमारे कहने से नहीं। तुम्हें अनुभव होगा ही। तुम भगवान हो ऐसा अनुभव होगा।

मैं दुःखी हूँ और कर्म से बंधा हुआ हूँ और मनुष्य हूँ और स्त्री और पुरुष, वह संयोग की बात है। ये (शरीरादि) तो सब संयोग हैं। जैसे चीनी थैले में हो तो थैला भिन्न और चीनी भिन्न है। ऐसे यह ज्ञानमूर्ति आत्मा, भगवान आत्मा भिन्न है और यह (शरीररूपी) थैला पुद्गल की अवस्था है। यह पुद्गल का थैला है उससे आत्मा भिन्न है। पुण्य-पाप की वृत्ति का उत्थान होता है, वह मैल और मलिनभाव है। भाई! वह तेरा स्वभाव नहीं है। पुण्य के परिणाम वे विभाव हैं, विकृतभाव हैं, दुःखदायक भाव हैं, मलिनभाव हैं। पाप को तो हर कोई पाप कहता है परन्तु पुण्य को भी पाप कोई विरला ही कहता है (योगेन्दुदेव योगसार, गाथा ७१)। क्योंकि वह भी बंध का कारण है। वह कोई आत्मा के सुख का कारण नहीं है।

भगवान आत्मा तो सदा ही, हमेशा, तीनों काल **अतिनिर्मल** निर्मलानंद परमात्मा अंतर विराजमान है। शुद्ध चैतन्यघन चिद्रूप आत्मा का स्वरूप चिद्रूप है। राग वह आत्मा का रूप नहीं है। पुण्य और पाप के परिणाम तो स्वांग हैं। वे कोई आत्मा का स्वभाव नहीं हैं। यदि वे पुण्य और पाप आत्मा का स्वभाव होते तो पुण्य-पाप का अभाव होकर किसी आत्मा को सिद्धगति प्रगट नहीं होती (और) पुण्य-पाप के परिणाम साथ में जाने चाहिये परन्तु वे तो जाते नहीं हैं। अतः आत्मा से पुण्य और पाप के परिणाम भिन्न हैं। सर्वज्ञ भगवान तो यहाँ तक कहते हैं कि पुण्य और पाप के परिणाम का आत्मा को स्पर्श हुआ नहीं, छुआ नहीं है, वे ऊपर-ऊपर तैरते हैं।

जैसे पानी में तेल की बून्द ऊपर-ऊपर तैरती है। वह पानी में प्रवेश नहीं कर सकती, वह तन्मय हो सकती नहीं, वह तदात्म्यरूप होती नहीं। परन्तु पानी के ऊपर तेल की बून्द जैसे ऊपर-ऊपर तैरती है ऐसे ही इस ज्ञान और आनंदमय आत्मा के ऊपर-ऊपर ये पुण्य और पाप के परिणाम तेल के स्थान पर ऊपर-ऊपर तैरते हैं परन्तु वे आत्मा के स्वभाव में प्रवेश करते नहीं। यदि आत्मा के

स्वभाव में अशुद्धि प्रवेश कर जाये तो आत्मा शुद्ध रह सकता नहीं। यदि शुद्ध ना रहे तो किसके आश्रय से अशुद्धता टलकर शुद्धता प्रगट करेगा? इसलिये आत्मा स्वभाव से (शुद्ध है)। एक आत्मा के दो पहलू हैं। एक सामान्य पहलू और एक विशेष पहलू। सामान्य को द्रव्य कहते हैं और विशेष को परिणाम कहते हैं।

अब जैन में जन्मे उसे छह द्रव्य और नव तत्त्व के नाम भी आते नहीं। तो यह आत्मा एक, उसके पहलू दो। पहलू अर्थात् side, दो साइड, अरुण भाई। आहाहा! परन्तु अब ये सब विचार करें, घंटा-दो घंटा निकालें तो इसमें कोई पैसा तो मिलता नहीं और उसमें तो पैसा मिलता है, प्रत्यक्ष लाभ। आहाहा! अरे! सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा और संत फरमाते हैं, करुणा करके कहते हैं (कि) अरे! तुझे प्रत्यक्ष नुकसान हो रहा है, तेरे चैतन्य प्राण का घात हो रहा है। ये परपदार्थ मेरे हैं ऐसी जो तेरी बुद्धि है (वह) मिथ्याबुद्धि है, विपरीत बुद्धि है। उससे तो तुझे चार गति मिलेगी। भाई! उसमें मोक्षगति - परम सुख का कारण नहीं होगी।

अतः **आत्मा तो सदा ही** तीनोंकाल। वर्तमान में पंचमकाल का आत्मा है जीव। चारों गति के जीव की बात है। **सदा ही** तीनों काल **अतिनिर्मल** शुद्ध **चैतन्यमात्रस्वभावरूपसे ज्ञायक है**, है लिखा है, होने से नहीं। संवर, निर्जरा और मोक्ष तो होता है परन्तु जीव तो अनादिकाल का मुक्तस्वभावी मोक्षस्वरूप आत्मा विराजमान है। अतः **चैतन्यमात्रस्वभावरूपसे** चैतन्य अर्थात् ज्ञान और दर्शनमय आत्मा। जानना और देखना ऐसा ही मात्र उसका स्वभाव है। पुण्य को करना और पाप को करना वह मूल आत्मा का स्वभाव नहीं है। वह तो अज्ञान से, उसको भ्रान्ति से कर्ताबुद्धि रही है। वह यदि आत्मा के स्वरूप का अनुभव करे तो कर्ताबुद्धि छूट जाये। और कर्ताबुद्धि छूटने के पश्चात् पुण्य और पाप के परिणाम आते तो हैं, परन्तु मैं कर्ता और यह मेरा कर्म ऐसे कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति उसके साथ नहीं दिखती। आत्मा का ज्ञान कर्म होता है, आत्मा का ज्ञान! शास्त्र का ज्ञान नहीं। शास्त्र का ज्ञान वह ज्ञान नहीं है।

आत्मा का ज्ञान जब वह आत्मा का कर्म होता है, कर्म अर्थात् कार्य, तब पुण्य और पाप के परिणाम वे ज्ञान का ज्ञेय होते हैं परन्तु वे आत्मा का कर्म बनते नहीं। सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म बात है। આ લંડનમાં આવી સૂક્ષ્મ વાત! ભાઈ! આત્મા સૂક્ષ્મ છે અને સૂક્ષ્મ વાત કરીને કાઢી નાખવા જેવી નથી. સૂક્ષ્મ એટલે ઊંચી. यह लंदन में ऐसी सूक्ष्म बात! भाई! आत्मा सूक्ष्म है और सूक्ष्म बात करके निकाल देने जैसी नहीं है। सूक्ष्म अर्थात् उत्तम। सूक्ष्म का अर्थ समझ में ना आये ऐसा नहीं, परन्तु समझने जैसी। थोड़ी सी मानसिक एकाग्रता करके और श्रवण करने जैसा है।

मुमुक्षु: शास्त्र का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान फिर से समझाईये?

पू. लालचंदभाई: शास्त्र का ज्ञान वह इन्द्रियज्ञान है और आत्मा का ज्ञान वह अतीन्द्रियज्ञान है। शास्त्र तरफ के झुकाव वाले इन्द्रियज्ञान में आकुलता अर्थात् दुःख होता है। तो क्या शास्त्र पढ़ना छोड़ देना? ऐसा प्रश्न तो होता है। छोड़ने ना छोड़ने की बात नहीं है। उसका स्वरूप क्या है वह समझना चाहिये। यह स्वरूप समझने की बात है।

करना, ना करना, छोड़ना, ग्रहण करना, जाने देना, उसकी बात नहीं है। वह शास्त्र तरफ का

झुकाव जाता है न, उसमें उसे विकल्प और शुभभाव की प्रगटता होती है, वह इन्द्रियज्ञान है, वह बहिर्मुखज्ञान है। जिस इन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा अनुभव में नहीं आ सकता, इसलिए इन्द्रियज्ञान भी हेय है। जैसे पुण्य-पाप के परिणाम हेय हैं ऐसे इन्द्रियज्ञान भी हेय है। तो अब क्या करना? कि आत्मा का ज्ञान करना। करने की बात तो है कि आत्मा का ज्ञान करो और पर को प्रसिद्ध करने वाला ऐसा इन्द्रियज्ञान उसे आत्मसन्मुख होकर रोको। इन्द्रियज्ञान भी जीतने जैसा है। विषय और कषाय दोनों को जीतने का सर्वज्ञ भगवान का फरमान है। विषय अर्थात् परपदार्थ को जानने की अभिलाषा। परपदार्थ को जानने की अभिलाषा - इच्छा, उसका नाम विषय है। उससे आत्मा दुःख भोगता है। और कषाय अर्थात् पुण्य-पाप के परिणाम को मैं करूँ ऐसा जो अभिप्राय उसका नाम कषाय है। विषय और कषाय। विषय अर्थात् परपदार्थ को जानने की अभिलाषा, इच्छा उसका नाम विषय। और परभाव और परद्रव्य का मैं करनेवाला हूँ ऐसा अभिप्राय उसका नाम कषाय। इन दो भावों को जीतकर भगवान आत्मा का अवलंबन ले तब एक अतीन्द्रियज्ञान, अतीन्द्रियआनंद प्रगट होता है।

ऐसा एक भेदज्ञान करके आत्मा की पहचान करने जैसी है। आत्मा के अनुभव के बिना चारगति में जीव भटक रहा है। उसको एक समय भी स्वानुभव दशा प्रगट हुई नहीं। इस आत्मा के अनुभव से धर्म की शुरुआत होती है, और अनुभव से वृद्धि और अनुभव से पूर्णता होती है। **एक होय त्रण कालमां, परमारथनो पंथ** (आत्मसिद्धि, गाथा ३६) परमार्थ अर्थात् सत्यार्थ मोक्षमार्ग का पंथ वह तो शुद्धात्मा का अवलंबन लेने पर ही होता है। पर का अवलंबन छूट जाता है, आत्मा आत्मा का अवलंबन लेता है। आत्मा को, आत्मा के द्वारा, आत्मा में से, आत्मा के लिये जानता है। तब उसे आत्मा का अनुभव होता है और अनुभव दशा का नाम **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थ सूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १) वीतरागी परिणाम है। राग से तीनकाल में धर्म नहीं होता। फिर चाहे वह उत्कृष्ट में उत्कृष्ट शुभभाव हो वह धर्म का कारण नहीं है। उसे कहते हैं कि अशुचि, अपवित्र परिणाम है।

बाद में नीचे दुःख का कारण कहेंगे। **आत्मा तो सदा ही** तीनों काल हमेशा के लिये **अतिनिर्मल चैतन्यमात्रस्वभाव** के कारण, चैतन्यमात्र क्यों कहा? कि स्वभाव में पुण्य-पाप का अभाव है। स्वभावभाव में पुण्य-पाप के परिणाम का अभाव है। जैसे कपड़े में ऊपर मैल है, परन्तु मैल का कपड़े के स्वभाव में अभाव है। ऐसे यह चीनी है (इस) चीनी में मैल भी है और मिठास भी है। परन्तु मैल होने पर भी हलवाई लोग उसे कढ़ाई के ऊपर चढ़ाकर, पानी डालकर उबालते हैं तो मैल निकल जाता है। तो ऐसा निश्चित होता है कि जो निकल जाता है वह चीज उसकी नहीं है। वह चीनी का स्वभाव नहीं है। कोई चीनी में से मिठास नहीं निकाल सकता परन्तु मैल तो निकाला जा सकता है। ऐसे आत्मा में से कोई ज्ञान का अभाव नहीं किया जा सकता। परन्तु राग-द्वेष का तो अभाव हो सकता है क्योंकि वह मैल है। ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप के परिणाम मलिन और मैल हैं। उस शुद्धात्मा का ध्यान करने पर अंदर आत्मा की भावना करने पर **एकाग्रचिंतानिरोधः ध्यानम्** (तत्त्वार्थ सूत्र, अधिकार ९, सूत्र २७) ऐसे अंदर में प्रवेश करने पर, उपयोग अंदर में आत्मा में जोड़ने पर, उपयोग को आत्मा में जोड़ना उसका नाम योग कहलाता है और उस परिणाम को आत्मा में अभेद करने में आये तो उसे योगी कहते हैं।

ऐसे योग अर्थात् उपयोग जो परसन्मुख जाता है उस उपयोग को बाहर से वापस मोड़कर आत्मा में जोड़ देना। उपयोग को आत्मा में जोड़ना उसका नाम योग है। और आत्मा में उपयोग जोड़ना उसका नाम ध्यान है। और उस उपयोग में आत्मा को ज्ञेय बनाना उसका नाम ज्ञान है। आहाहा!

बाहर भटकता है उपयोग। क्षण में यहाँ से सुख लेना, क्षण में यहाँ से, क्षण में पिक्चर देखकर सुख, क्षण में टी.वी. देखकर सुख, क्षण में टेपरिकार्ड सुनकर सुख, क्षण में अखबार पढ़कर सुख, क्षण में दुकान जाऊँ तो सुख - ऐसे सुख हेतु उसका उपयोग चारों ओर घूमता है। ज्ञेय से ज्ञेयांतर, ज्ञेय से ज्ञेयांतर, ज्ञेय से ज्ञेयांतर। कोई ऐसा कहे कि भाई मुझे तो टी.वी. देखने से सुख मिलता है। तो हम कहेंगे कि भले खुशी से तुम देखो। जब आधा घंटा, घंटे, दो घंटे हों (तब कहेगा कि) अब बंद करो। क्यों? टी.वी. देखने से सुख था न? क्या हुआ? फिर कहता है कि मुझे भोजन में आज ख़ास करके मुझे दूधपाक-पुरी भाता है। और वह खाऊँ तो सुख मिले। जहाँ एक कटोरी और दो कटोरी खाई और जहाँ तीसरी कटोरी (दी वहाँ कहता है) हं..... मुझे उल्टी होगी रहने दो। परन्तु क्यों? दूधपाक खाने से तू कहता था कि मैं सुखी होता हूँ। तो जिसमें सुख मिले उसका जीव नकार क्यों करे? ऐसे नकार ना करे। जिसमें उसे सुख की प्राप्ति हो उसका नकार नहीं होता।

ऐसे सुबह से शाम तक उसकी चर्या में कहीं उसकी स्थिरता नहीं। कहीं उपयोग स्थिर होता नहीं, टिकता नहीं। सुबह नव बजे ऑफिस जाता है और जहाँ शाम को साड़े पाँच हुए, थककर टें हो गया। अब दूकान बंद करो, ग्राहक आये तो भी नहीं चाहिए। क्या हुआ? क्यों पैसा कमाने में सुख था न? क्यों दुकान बंद करते हो? ग्राहक तो चालू है। परन्तु उसे वहाँ थकान लगती है, थकान लगती है।

अधर्म के परिणाम उसका स्वरूप थकान और दुःख है। और धर्म के परिणाम में किंचित् मात्र दुःख नहीं है। सिद्ध परमात्मा सादि-अनंतकाल, सादि-अनंतकाल सुख को भोगते हैं। परन्तु उन्हें थकान लगती नहीं। स्वभाव में थकान नहीं होती, विभाव में थकान होती है। पुण्य और पाप के परिणाम विभाव हैं, वे आत्मा के स्वभावभाव नहीं हैं। यह मूल बात समझने जैसी है। यह बात तो जिनेंद्र भगवान के सिवाय कहीं है नहीं। फिर इसका सुनो और इसका सुनो और इसका सुनना और इसका सुनना। सुनने में भी विवेक का ठिकाना नहीं है। आहाहा! सबका सुनना।

अरे भाई! सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के सिवा शुद्धात्मा का स्वरूप कोई जानता नहीं है। और उसका अनुभव कैसे हो उनके सिवा कोई आत्मा का स्वरूप कह सकता ही नहीं। वे सभी कल्पना की बातें हैं। आत्मा ऐसा है और आत्मा ऐसा है। हम ध्यान में बैठते हैं तो आज तो हमने प्रकाश देखा। प्रकाश तो पुद्गल की पर्याय है। आत्मा तो अरूपी है उसका प्रकाश नहीं होता। या तो कहे मुझे आज तो बहुत शांति (हुई)। भाई! वह मानसिक शांति है, वह आत्मिक शांति नहीं है। वो कषाय की मंदता जरा हो जाये न, तो ध्यान में उसे शांति लगती है। ऐसे यहाँ और वहाँ उल्टे-तिरछे मार्ग पर चढ़कर और ये धर्म नाम पर ठगा गया है। अनादिकाल से ठगाया जा रहा है।

परन्तु सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के द्वारा कहा हुआ शुद्धात्मा का जैसा स्वरूप, (उन्होंने) जो प्रत्यक्ष केवलज्ञान में जाना जिन्होंने, और वाणी में आया ऐसा स्वरूप इस जगत में अन्यत्र कहीं है नहीं।

वह यहाँ आचार्य भगवान फरमाते हैं कि भाई! यह कोई संप्रदाय की बात नहीं है। यह तो आत्मा की बात है। और आत्मा के आश्रय से धर्म होता है। ये बनिये को धर्म हो और लुहार को ना हो, मुसलमान को ना हो ऐसा नहीं है, सभी आत्मा हैं। जो कोई आत्मा का अवलंबन लेता है उसे धर्म होता है। कोई वर्ग और कोई जाति, कोई इसमें बाधा नहीं है धर्म करने में। आत्मा के धर्म की बात चलती है। परन्तु जिसका ध्यान करना है उसके सच्चे स्वरूप की ही खबर ना हो तो ध्यान कहाँ और किसका करना?

ध्येय के स्पष्ट ज्ञान बिना तीनकाल में धर्म-ध्यान प्रगट हो सकता नहीं। जिसका ध्यान करना है, आत्मा का, और आत्मा का सच्चा स्वरूप क्या वह तो कोई जानता नहीं है और कल्पना से आत्मा ऐसा और आत्मा ऐसा (ऐसे कहे)। यहाँ आचार्य भगवान फरमाते हैं शुरुआत में कि, हम सर्वज्ञ भगवान के द्वारा कही हुई बात, गणधरों की कही हुई बात, श्रुतकेवलियों की कही हुई बात, हमारे गुरुपर्यन्त जो हमें बात मिली है, वह हम हमारे अनुभव के आनंद के वेदन के साथ यह शास्त्र लिखते हैं।
आप भी प्रमाण करना, अनुभव करके प्रमाण करना।

कहते हैं कि यह आत्मा, सबका आत्मा पवित्र, **सदा ही अतिनिर्मल चैतन्यमात्रस्वभावरूपसे**, **मात्र** शब्द क्यों कहा? कि पुण्य और पाप के परिणाम आत्मा के स्वभाव में नहीं हैं। बाहर हैं, ऊपर-ऊपर तैरते हैं। जैसे पानी में तेल की बून्द ऊपर-ऊपर होती है प्रवेश पाती नहीं, ऐसे पुण्य-पाप के परिणाम पर्याय में, अवस्था में, हालत में हैं (परन्तु) द्रव्य स्वभाव में पुण्य-पाप नहीं हैं। परन्तु क्या द्रव्य स्वभाव और क्या पर्याय? आहाहा! अरुणभाई! इतना भी टाइम मिलता नहीं? जैन में जन्मे फिर भी। General (सबके लिए), यह तो general बात है हों!

मुमुक्षु: फुरसत नहीं मिलती।

पू. लालचंदभाई: रुचि हो तो फुरसत मिले।

एक बार प्रश्न हुआ राजकोट में उस प्रकार का कि एक भाई उद्योगनगर में फैक्ट्री में सर्विस करने जाते थे। सुबह के आठ बजे साईकल पर जाते थे। साधारण स्थिति के व्यक्ति। मोटर-बोटर ना मिले। साईकिल ऊपर जाये सुबह आठ बजे और दोपहर को दो घंटे उसे टाइम मिले (तब) भोजन करने आये। भोजन के बाद वापस चले जायें, रात को आठ बजे छूटे। रविवार का दिन था छुट्टी का तो रात्रि-चर्चा में वे भाई वहाँ आये। उन्होंने प्रश्न किया, कि गुरुदेव मुझे धर्म तो करना है परन्तु मुझे टाइम मिलता नहीं। यह आपने प्रश्न किया न? कि मुझे टाइम नहीं मिलता। कहा (कि) क्या तुम्हारा कार्यक्रम है? क्यों समय नहीं मिलता? फिर उसने ऐसा कहा कि सुबह के आठ से रात के आठ बजे तक गधा-मजदूरी करता हूँ। समझ गये? सभी गधा-मजदूरी ही करते हैं। कहा (कि) उसमें टाइम मिलता नहीं। ठीक। तो तुम ऐसा करो; तुम कितने बजे सुबह को उठते हो? कहा कि सुबह लगभग साढ़े छह सात बजे उठता हूँ और आठ बजे तक तैयार होकर निकल जाता हूँ। तो कल से तुम पाँच बजे उठो। क्योंकि बालक सब सोये रहें। घर में सब शांति हो। साढे छह के बजाय पाँच बजे उठो। पाँच बजे उठकर तुम्हारा स्वाध्याय तुम निरंतर एक घंटे कर लो। कोई तुम्हें बाधक नहीं होगा। अर्थात् कहने का आशय यह है, कि जिसे रूचि हो उसे टाइम मिले, मिले और मिले ही। परन्तु जहाँ रूचि ही नहीं वहाँ बहाने झूठे हैं। आहाहा!

अरे! यह मनुष्यभव मिला है मुश्किल से, उसमें भी जैनदर्शन मिलना दुर्लभ है, उसमें भी सर्वज्ञ भगवान की वाणी कान पर आना, अनुभवी संतों की वाणी कान पर आना वह तो चक्रवर्ती से भी पुण्य बढ़ गया हो, तब उन सर्वज्ञ भगवान की वाणी कान पर आती है। इतना पुण्य हो तो। अब वह पुण्य भी मिला और बात भी सुनने को मिली। परन्तु बात सुनकर उसका विचार करके और उसका निर्धार करना चाहिये, निर्णय करना चाहिये। और निर्णय करके उसे बात को प्रयोग में रखनी चाहिये तो उसे आत्मा का अनुभव हो सकता है। इस काल में, पंचमकाल में आत्मा का अनुभव हो सकता है। सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया है, कि धर्म-ध्यान हो सकता है, शुक्ल ध्यान अभी नहीं है। श्रेणी मांडे और केवलज्ञान हो उस प्रकार की अभी जीव की योग्यता नहीं है, बलहीन है।

आत्मा सदैव, **सदा ही अतिनिर्मल चैतन्यमात्रस्वभावरूपसे ज्ञायक है, इसलिये अत्यन्त शुचि ही है**। आहाहा! आत्मा पवित्र है। पुण्य-पाप के परिणाम अपवित्र और आत्मा पवित्र, दोनों एक साथ रहे हुए हैं परंतु दोनों एक होते नहीं हैं। ट्रेन की दो पटरियाँ होती हैं न ऐसे साथ-साथ चलती जाती हैं किन्तु पटरियाँ कभी एक होती हैं? तो-तो एक्सीडेंट हो जाये। परंतु ऐसा तो होता नहीं है। वे अलग-अलग, भले पास-पास में हों परंतु अलग-अलग हैं। ऐसे ही यह भगवान आत्मा जीवतत्त्व, नव तत्त्व में एक जीवतत्त्व वह अतिनिर्मल पवित्र परमात्मा है। और आस्रवतत्त्व, उसकी दशा में पुण्य और पाप के परिणाम होते हैं, वे आस्रवतत्त्व हैं। दोनों साथ-साथ हैं परंतु दोनों का एक होना अशक्य है। आत्मा पुण्य-पापरूप नहीं होता और पुण्य-पाप के परिणाम आत्मारूप नहीं होते। वे दोनों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। परंतु दो की भिन्नता भासित नहीं होती। दोनों एक जैसे लगते हैं। परंतु एक हैं नहीं। अतः भिन्न हैं तो भिन्न का भान भलीभाँति हो सकता है। अतः **अत्यंत शुचि ही है (-पवित्र ही है; उज्ज्वल ही है)।** अब एक बोल हुआ। दो बोल बाकी हैं, आस्रव और जड़पना। समय हो गया, सवा नव, एक घंटा।

ॐ